उत्तराखण्ड हिमालय की भोटिया जनजाति

डॉ. दीपक डोभाल
रूड़की

भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड के चमोली, उत्तरकाशी, पिथौरागढ़, बागेश्वर आदि जनपदों में सदियों से निवास करती रही है। राहुल सांकृत्यायन ने भी सीमान्त क्षेत्र के निवासी भोटिया होने के कारण इस क्षेत्र को भोट प्रदेश कहा गया।

भोटिया शब्द की उत्पति ''भोट'' अथवा भूट् से हुई है। उत्तराखण्ड के तिब्बत (चीन) तथा नेपाल सीमा से जुड़े क्षेत्र को भोट या भूट् क्षेत्र कहा जाता है। भोटिया जनजाति पूरे हिमालय क्षेत्र में निवास करती है। भूटान में भूटानी सिक्किम में भोटिया, हिमाचल में किन्नौर, भौटा आदि नामों से भोटिया जनजाति की पहचान होती है। अंग्रेज एवं यूरोपीय विद्वानों ने भी गढ़वाल एवं कुमाऊँ में रहने वाली जनजातियों की बोली, भाषा, रहन–सहन व सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध में अनेक खोजपूर्ण लेख प्रस्तुत किये। जिसमें ई0टी0ऐटकिसन ने हिमालय गजेटियर भाग 1, 2, 3 में, शेरिंग सी0ए0–वैस्टर्न तिब्बत एवं बिट्रिस वाण्डरलैण्ड, बाल्टन–गजेटियर ऑफ कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजाति के क्षेत्र को 'भोट' नाम से उल्लेख किया। हिमालय के मध्य स्थित सीमान्त क्षेत्र नीति व माणा घाटी में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को क्रमशः तोच्छा व मारछा से जाना जाता है। तिब्बत वाले नीति–भाषा घाटी के तोल्छा–मारछाओं को नीरी रंडपा व 'डूनी रंडपा' तथा उत्तरकाशी वालों को ''सोसा रंडपा'' कहकर सम्बोधित करते थे। रंडपा को तिब्बती भाषा में रंड घाटी, 'पा' का तात्पर्य रहना, बसना अर्थात नीती–माणा घाटी में बसने वालों को क्रमशः नीरी रंडपा व डूनी रंडपा तथा जाड़ गंगा घाटी में बसने वालों 'सोसा रंडपा' कहते थे।

विद्वानों व इतिहासकारों ने तोल्छा शब्द को स्थानीय भाषा में (तिल्या छौर के निवासी) निचली घाटी में बसने वाली जाति को कहा है। मारछा (मल्या छौर के निवासी) ऊपरी घाटी में बसने वाली जाति को कहा है। एक अन्य शोध के अनुसार मारछा (मार–घी, छा–नमक) घी व नमक की चाय पीने वालों से तथा तोल्छा (तोर–तेल, छा–नमक) अर्थात तेल व नमक को मिलाकर बनी ज्या (चाय) पीने वालों से है।

उत्तरकाशी में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को स्थानीय लोग 'जाड़' कहकर सम्बोधित करते है। यह जाति जाड़ गंगा के उद्गम स्थल के समीप जादुंग, नेलंग, बागोरी व डुण्डा आदि गाँव में निवास करती है। इसलिए इन्हें स्थानीय बोली में 'जाड़', जाड़ भोटिया नाम से सम्बोधन किया जाता है। सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ की धारचूला तहसील में दारमा, व्यास व चौंदास घाटियों में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को 'शौका' नाम से सम्बोधित किया जाता है। शौका भोटिया जनजाति व्यास, चौंदास व दारमा घाटी में क्रमशः व्याड़सी, चौदाड़सी व दारमी आदि नामों से भी जानी जाती है।

यूरोपीय विद्वानों में एटकिन्सन, वाल्टन, ट्रेल व कूक्स ने भी 'शौका' शब्द के लिए भोटिया नाम प्रयुक्त किया। यह जातिगत नाम चीन–तिब्बत सीमा से जुड़े उपहिमालयी क्षेत्रों में निवास करने वाली जातियों तथा उसकी विभिन्न शारिरिक विशेषताओं के आधार पर दी गयी है। भोटिया जनजाति की शारीरिक विशेषताओं में तिब्बत के साथ पुराने व्यापारिक सम्बन्धों के आधार पर उनके साथ रक्त मिश्रण होने से होने से अनुवांशिक लक्षणों में मंगोलियन विशेषताएँ स्पष्ट होती है। जिससे भोटिया जनजाति में शारीरिक बनावट, बोली–भाषा, रहन–सहन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन शैली में मंगोलियन (तिब्बती) विशेषताऐं आज भी दृष्टिगोचर होती है।

डी0एन0 मजूमदार ने भी भोटान्तिकों को भारतीय मूल का बताया है क्योंकि भोटियों के प्राचीन समय से ही तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। जिससे धीरे–धीरे इनके वैवाहिक सम्बन्ध भी हो जाने के कारण भोटियों में रक्त मिश्रण होने से तिब्बतियों के अनुवांशिक लक्षण विद्यमान हो गये। आज भी भोटिया जनजाति में तिब्बत मूल (मंगोलियन) मुखमुद्रा, छोटी आँखें, गोल व गेंहुवा चेहरा, सामान्य कद आदि विशेषताऐं परिलक्षित होती हैं। अतः भोटिया जनजाति सदियों से हिमालय के मध्य क्षेत्रों में निवास करने वाली भारतीय मूल की ही जनजाति है।

भोटिया जनजाति के लोग ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों के चारागाह व बुग्यालों के अति निकट बसे होने के कारण इनका आर्थिक जीवन का मुख्य आधार पशुपालन (भेड़–बकरी पालन) व ऊँन उद्योग रहा है। भारत चीन युद्ध से पूर्व भोटिया व्यापारियों का तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध सदियों से चलता रहा। ये व्यापारी हिमालय के पर्वतीय मार्गों (दर्रों) से होकर ग्रीष्म ऋतु में अपनी भेड़–बकरियों सहित तिब्बत की मण्डियों में पहुँचते थे। भेड़–बकरियों को ऊन प्राप्त करने के साथ–साथ भारवाहक के रूप में भी उपयोग किया करते थे। हिमालय के पर्वतीय मार्गों से तिब्बत मार्गों से तिब्बत पहुँचने के लिए कुमाऊँ की जोहार घाटी से ऊँटाधूरा, किंगरी–बिंगरी एवं लिपूलेख मार्ग प्रमुख थे। टिहरी मार्ग से छपराड़, माणा से थोलिंग, नीति से दापा, ऊँटाधूरा से ज्ञानिम, लिपूलेख और नेपाल सीमा से तिकंर, तकलाकोट से दरचैन से तिब्बत पहुँचा जाता था। भोटान्तिकों वस्तु विनियम व्यापार में यहाँ से चाय–चीनी, तम्बाकू, सूती धागा, रंग, उवा, जौ, फाफर आदि वस्तुओं को अपनी भेड़–बकरियों में लादकर तिब्बत की ऊँटाधूरा, लिपूलेख, दारमा आदि मण्डियों तक पहँचते थे। वहाँ से हींग, फरण, लादा, चोरू व अन्य जड़ी–बूटियाँ लेकर उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बेचते थे। तिब्बत से नमक को भेड़–बकरियों में लादकर टनकपुर, हल्द्वानी, कोटद्वार, रामनगर, पौड़ी आदि क्षेत्रों में पहुँचकर ''माल का लून'' कहकर जौ, मडुवा व मोटे अनाज के बदले देते थे। वस्तु विनियम प्रणाली के आधार पर तिब्बत से जौ, उवा, मडुवा अनाज के बदले अन्य वस्तुएँ लाकर यहाँ पर बेचते थे। इसके अतिरिक्त भोटिया व्यापारी पशम ऊन उद्योग का व्यापार भी करते थे। शीत प्रदेशों में रहने वाले याक, घोड़ों, भेड़–बकरियों के शरीर के लम्बे कोमल बालों से पशम ऊन तैयार किया जाता था। ग्रीष्मऋतु के शुरू होते ही भेड़–बकरियों के शरीर से ऊन (बाल) काटी जाती थी। भोटिया व्यापारी तिब्बत से पशम ऊन लाकर उत्तराखण्ड में बेचते थे। जिससे उन्हें अच्छी आय प्राप्त होती थी। तिब्बत व्यापार के समय तिब्बत से हुनकारा भेड़े व बकरियाँ जौहार के भोटिया व्यापारी खरीदकर उन्हें मांस हेतु लैन्सडौन, रानीखेत आदि छावनियों में बेचते थे। चारागाहों में भेड़–बकरियों की अधिक संख्या होने से उनकी देखरेख के लिए हुन्निकुकुर (भोटिया कुकुर) रखते थे। ये कुत्ते (कुकुर) बड़े फुर्तीले एवं ताकतवर होते हैं। आज भी जब भोटिया अपनी भेड़–बकरियों को लेकर निचली गरम घाटियों में शीतकाल में चुगाने आते हैं तो उनके साथ भोटिया कुत्ते (कुकुर) भेड़–बकरियों की रखवाली के लिए जंगलों एवं चारागाहों में देखे जा सकते हैं। तिब्बत आक्रमण से पशमीना ऊन का आयात बन्द होने से ऊन उद्योग संकट में पड़ गया। तब भोटिया व्यापारियों ने अपनी भेड़–बकरियों की टोलियाँ तैयार की और पुनः ऊन उद्योग को विकसित करके इसे गृह उद्योग के रूप में अपनाया। आज भोटिया महिलाएँ अपने घरों में हथकरघे से ऊन की कूटाई, फटाई व सफाई में व्यस्त रहती हैं। पूरे दिन भर ऊन की कताई करती रहती हैं। ऊन से घर के सदस्यों के लिए गरम कोट, पंखी, शाल, थुलमा, कमरबन्ध आदि बुनती रहती हैं। इनके द्वारा प्राकृतिक रंगों से सजाकर तैयार 'कालीन' बहुत ही आकर्षक लगती है। ये रंग पेड़ों, पत्तियों एवं जड़ों से रस निकालकर बनाये जाते हैं। ऊन को इन रंगों से रंगकर रंग–बिरंगे ऊनी वस्त्र तैयार करते हैं। ऊन से निर्मित थुलमा, गलीचे, ऊनी पंखियों को उचित दामों पर बेचकर मुनाफा कमाते हैं। ऊन की कताई के लिए पहले तकली का प्रयोग किया जाता था। लेकिन अब तकली से ऊन कातना प्रायः विलुप्त हो चुका है। ऊन की सफाई करते समय कूड़ा करकट, कुमर आदि को निकालकर उसे गुनगुने गरम पानी में एक घंटे तक भिगोकर रख दिया जाता है। उसे लकड़ी के बल्ले से कूटकर एवं ठंडे पानी से धोकर धूप में सुखाने रख दिया जाता है। तत्पश्चात उसे चरखे से कातकर धागा तैयार किया जाता है।

ऊन कातने के लिए सामान्य चरखे का प्रयोग सन् 1967 में तथा राच का प्रयोग 1975 में भोटिया जनजाति के द्वारा आरम्भ किया गया। लकड़ी से निर्मित ये उपकरण आज भोटियों की आजीविका के प्रमुख साधन है। भोटिया परिवारों के पास 36 इंच राँच 'छोटी राँच' व 72 इंच राँच 'बड़ी राँच' के नाम से जानी जाती हैं। पंखी व शाल को बड़ी राँच में बुना जाता है जबकि लवा, मफलर, चुटका छोटी राँच में बुनी जाती है। छोटी राँच को जमीन में सेट करके पाँवों द्वारा संचालित किया जाता है। इस राँच को 'खड्डराँच' कहते हैं। इसके अलावा खड़ीराँच, पड़ीराँच, बेलनराँच आदि द्वारा भी ऊन की बुनाई की जाती हैं। आज अस्सी प्रतिशत भोटिया व्यक्ति ऊनी कारोबार से जुड़े हुए हैं। जिसमें कुछ परिवारों के पास अपनी ही भेड़ों की ऊन होने से कताई–बुनाई की जा रही है। दूसरे वे हैं जो अन्य परिवार से ऊन खरीदकर ऊनी कारोबार में संलग्न हैं। आज ऊन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उत्तराखण्ड सरकार ने मुनस्यारी, धारचुला, माणा, हर्षिल, भटवाड़ी, गोपेश्वर, उत्तरकाशी आदि स्थानों में 'प्रशिक्षण केन्द्र' खोले हैं। जहाँ पर नवीनतम तकनीक से ऊन उद्योग के कारोबार को प्रगति प्रदान करने के उद्देश्य से हस्तशिल्पियों को जिला उद्योग केन्द्र, खादी ग्रामोद्योग केन्द्र, सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा आर्थिक रूप से भी सहायता प्रदान की जा रही है। जिससे की उत्तराखण्ड में ऊन उद्योग उचित ढंग से विकसित हो सके। इसी उद्देश्य से उत्तराखण्ड में 'जनजाति विकास निगम' की स्थापना चमोली, भीमताल, उत्तरकाशी, डुण्डा आदि भोटिया जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में करके उनके ऊन व्यवसाय को आगे बढ़ाया जा सके, और यह उद्योग इस जनजाति के विकास का आर्थिक आधार बन सके।

जड़ी–बूटी व्यवसाय

हिमालय के शिखरों में चिरकाल से ही अनेक प्राणरक्षक औषधीय पादपों का प्रचुर भण्डार रहा है। हिमालय के पद तल पर उगने वाली असंख्य प्रजातियों की औषधीयों का विवरण आयुर्वेदिक ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। ये औषधीय पादप दस हजार फुट से लेकर पन्द्रह हजार फुट की ऊँचाई पर बर्फ के पिघल जाने के पश्चात पुष्पित व पल्लवित हो जाते हैं। जुलाई माह में हिमालय के निकट स्थित घाटियों में ये वनस्पतियाँ रंग–बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित हो जाती है। एक माह पश्चात इनमें बीज व कन्द परिपक्व हो जाते हैं। हिमालयी क्षेत्र में उगने वाले समस्त पादपों (वनस्पतियों) में औषधीय गुण पाये जाते हैं। उन्हें जड़ी–बूटी कहते हैं। इन जड़ी–बूटियों में अतीस, कड़वी, कूट, ममीरी, डोलू, टांटरी, ब्रजदन्ती, विषकण्डार, निर्विषि, पत्थरचट्टा, किरमाड़, गठ्ठा गुग्गल, जटामासी, टांकाझाड़, झल्लाघास, बनककड़ी, संगसरमूल, चोरा आदि हिमालय की उपत्यकाओं में आज भी पायी जाती हैं। नीती–माणा घाटी के भोटान्तिक पूर्वकाल से ही इन औषधियों का उपयोग अपने स्वास्थ्य हित के लिए करते आये हैं। इन ''औषधीय पादपों की सारणी'' निम्न प्रकार से है–

क्र. स.	नाम औषधि	वनस्पति का नाम	उपयोगी भाग	गुण
1.	हत्थाजड़ी	आकिस लैटीफेंलिया	जड़	पित्त, मधुमेह, धातु, रोग व रक्त बहाव को रोकने में
2.	टतीस	एकोनिटस	जड़	ज्वर, पेट दर्द व असहाय रोगों की अचूक दवा
3.	कुट	ससुरिया लापा	जड़	पेट दर्द, घायल व्यक्ति या पशुओं को घोल बनाकर पिलाने से स्वास्थ्य लाभ
4	कुटकी	पिकाराइजा	जड़	पीलिया, ज्वर उदररोग, दमा में लाभकारी
5.	मसी	जाइडो स्टैकिस	जड़	वायुविकार, मिर्गी, धूप के लिए

	(जटामासी)			उपयोगी
6.	लालजड़ी (रतनजोत)	मैकोटोनियार्तथपाई	जड़	सरसों के तेल के साथ मिलाने से बाल नहीं झड़ते
7.	डोलू (टांटरी)	रियमझमोड़ी	जड़	फोड़ा–फुन्सी की दवा, प्राकृतिक रंग
8.	चिरैता	स्वर्सिया चिरैता	पत्ती	पत्तियों के रस से ज्वर नष्ट
9.	निर्विसी	डोल्फिनयिम डेनटेटम	जड़	सर्प बिच्छू दंश व नेत्र विकास में सहायक
10.	मीठा विष	इकोनाइटस	जड़	सिरशूल, ज्वर, खांसी में लाभप्रद
11.	टंकाझाड़	माल्वा वर्टिसिलेटा	जड़/पत्ती	मूत्र व सूजन में लाभकारी
12.	ब्रह्मकमल	ससुरिया ओमालाय	बीज/जड़	कटे अंग के लिए लाभकारी
13.	गुगल धूप	ज़ूरीनेआ	जड़	अस्थिभंग, आमवात में लेप व तन्तुओं की सुगन्धित धूप
14.	कस्तूरी कमल	बुनोनियम	पत्ती	ज्ले, कटे, फोड़ा–फुंसी में पत्तियों का रस उपयोगी
15.	थोया (जंगलजीरा)	कैरमपार्वी	बीज	अजीर्ण की अचूक औषधि एवं मसालों में प्रयुक्त
16.	भोज़पत्र	बेटुला भूटिलीस	छाल/फल	कर्णशूल व स्राव, विषविकार में उपयोगी
17.	जिब्बू	–	–	सूखी पत्ती का चूर्ण, पाचन शक्ति में वृद्धि
18.	गंदरायण	–	–	उदर विकारों में सहायक
19.	रीठा	–	–	धुलाई व चीनी शोधन में
20.	छड़ीला	–	–	धूप निर्माण में
21.	दारू हल्दी	–	–	दांत रोग के उपचार में
22.	वतीसा	–	–	वात रोग के उपचार में
23.	तेजपात	–	–	मसाले में प्रयुक्त
24.	पाषाणभेद	–	–	पथरी के उपचार में
25.	दन्दशा	–	–	केशवर्धक तेल निर्माण

उपरोक्त आयुर्वेदिक औषधियों का जनजातियों ने सदियों से इन्हें संग्रहित करके अपने आर्थिक जीवन एवं व्यक्तिगत उपयोग के लिए एवं बीमारियों के उपचार हेतू इन औषधियों गुणों से युक्त जड़ी–बूटियों को अपने जीवन में उपयोग किया है। खाम्पा (तिब्बती) जाति क लोग, त्वा, डोल, लस्पाखत्र, जिब्बू, कुटकी आदि वनस्पतियों को बुग्यालों से लाकर आंशिक रूप से संग्रह करके पिथौरागढ़, गोपेश्वर, टनकपुर, बागेश्वर व जौलजीवी आदि स्थानों में लाकर बेचते थे। इसके अलावा धौलीगंगा, विष्णुगंगा घाटी के भोटिया रकाना, दमजन, शिलाखन, होती, बदरीपयार, बसुन्धरा आदि बुग्यालों से महत्वपूर्ण औषधियों को संग्रहित करके जोशीमठ, गौचर, पौड़ी, दुगड्डा, कोटद्वार आदि स्थानों में जाकर बेचते थे। खाम्पा भोटिया लोग आज भी हींग, चोरू, फरण, लादा आदि को बेचते हुए देखे जाते है लेकिन भारत सरकार द्वारा इन जड़ी–बूटियों के अवैध दोहन पर नियन्त्रण रखने के लिए वर्तमान में इनके व्यवसाय पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इन जड़ी–बूटियों को केवल निजी उपयोग के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है।

सरकार को इन जीवन रक्षक औषधीय गुणों से युक्त जड़ी–बूटियों को व्यवसायिक तौर पर उगाकर सीमान्तवासियों के लिए आजीविका का साधन बनाना चाहिए। जिससे उत्तराखण्ड का जड़ी–बूटी उद्योग विकसित होकर अर्थव्यवस्था में सहायक हो सके।

पशुपालन

पशुपालन व्यवसाय के साधनों का अभाव होने से भोटिया व्यापारियों द्वारा पाली गयी भेड़–बकरियों, घोड़ों एवं खच्चरों का उपयोग भारवाहक के रूप में किया जाता है। सरकार ने भी पशुपालन व्यवसाय को प्रोत्साहन देने के लिए भेड़ पालक भोटिया बाहुल्य क्षेत्रों में ''भेड प्रजनन केन्द्र'' की स्थापना की है। जिसमें कि उत्तम कोटि की भेड़ें प्राप्त करके ऊन उद्योग को विकसित किया जा सके। इनके द्वारा पाले जाने वाले पशु भेड़, बकरी, गाय, भैंस व कुत्ता आदि हैं। भोटिया व्यापारी शीतऋतु में अपनी भेड़–बकरियों को लेकर निचली गरम घाटियों में पौड़ी, ऋषिकेश, लैन्सडौन आदि क्षेत्रों में चले आते हैं। यहाँ इन भेड़–बक्ररियों को रखवाली करने के लिए तेज, स्फूर्ति एवं ताकतवर कुत्ते भी होते हैं जो जंगलों एवं चारागाहों में जंगली जानवरों से भेड़–बकरियों की सुरक्षा करते हैं। भोटिया अपनी भेड़–बकरियों को इन क्षेत्रों में लाकर 2000–3000 रूपये प्रति बकरी के अनुसार बेचकर मुनाफा कमाकर पुनः ग्रीष्म ऋतु में ऊँचे बुग्यालों (चारागाहों) पर अपनी भेड़–बकरियों के साथ वापस चले जाते हैं। लेकिन इन चारागाहों में जड़ी–बूटियों के संरक्षण के उद्देश्य से ''भारत सरकार वन मंत्रालय'' ने वर्ष 1986 में भेड़–बकरियों के चुगान पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सन् 1982 में ''नन्दा देवी वायोस्फेयर'' क्षेत्र घोषित हो जाने के कारण 5860 वर्ग कि0मी0 के क्षेत्र में चारागाह (चुगान) पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जिसके कारण सीमान्त जनपद चमोली एवं पिथौरागढ़ के भेड़–बकरी पालकों को गहरा आघात पहुँचा। जिससे भोटिया समाज का (भेड़–बकरी) पशुपालन व्यवसाय के प्रति रूझान खत्म होता चला गया। आज भोटियों में भेड़–बकरी पालन बहुत कम देखने को मिल रहा है लेकिन सरकार को पुनः आर्थिक अनुदान देकर ऊन व्यवसाय को विकसित करने के लिए विशेष प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए।

प्रमुख वनस्पतियाँ

अत्यधिक उँचाई वाले स्थानों में छोटे आकार की वनस्पतियाँ एवं लगभग 1100 से 1300 फीट की उँचाई पर छोटी–छोटी घास उगती है। मखमली हरी घास से भरे ढ़ालदार मैदान जिन्हें 'बुग्याल' (घास के मैदान) कहते है। भोटिया जनजाति के व्यक्ति इन ऊँचे बुग्यालों में अपनी भेड़–बकरियों व घोड़े, खच्चरों को चुगाने के लिए जाते है। नीति–माणा घाटी के भोटिया ग्रीष्म काल में अपनी भेड़–बकरियों को द्रोणगिरी, जेलम, टैकना, सोयना, बड़ाहोती, रिमखिम, ढामणसैंण (गमसाली) माणा के घासतोली आदि बुग्यालों में ले जाकर चुगाते हैं, पुनः शीतकाल में वापस अपने शीतकालीन गावों में आ जाते है। इन्हीं बुग्यालों में अनेक महत्वपूर्ण वनस्पतियाँ उगती है। जिनमें :–

1. **ब्रहमकमल, श्वेतकमल, पीतकमल, व फैण कमल–** लगभग 14000 फीट ऊँचाई पर सितम्बर–अक्टूबर माह में कई पुष्प खिलते हैं। इनमें फैण कमल (फैणा कमल) पुष्प के बारे में भोटिया जनजाति की मान्यता है कि यह पुष्प सर्व सुखदायक एवं शत्रुनाशक होनें के कारण अपने घरों में रखा जाता है। इसे प्राप्त करने के लिए स्नान करके जाना पड़ता है और जहाँ पर फैणा कमल (झागयुक्त कमल) खिला होता है तब उस जगह पर धूप–अगरबत्ती देकर तोड़ा जाता हैं उसे लाकर घर में स्वच्छ ऊँचे स्थान पर सुरक्षित रखा जाता है।

2. **भोजपत्र–** यह महत्वपूर्ण वृक्ष जिसे प्राचीन समय में कागज के स्थान पर प्रयोग किया जाता था। दस हजार से लेकर तेरह हजार फुट की ऊँचाई पर यह वन पाये जाते हैं। धार्मिक रूप से भी यह वृक्ष काफी महत्वपूर्ण है। इसके पत्रों से ताबीज, गण्डे आदि बनाये जाते हैं। इसकी हरी पत्तियों को मृग (हिरन) बड़े शौक से खाता हैं। भोजपात्र का प्रयोग पहले लोग 'पत्तल' बनाने के लिए भी करते थे। भोजपत्र के तने से एक प्रकार का रस (गोंद) निकलता है। जिसे स्थानीय भाषा में 'भोजलीषा'

कहते हैं। इसका उपयोग पेट की गरिष्ट दूर करने एवं चाय पत्ती के रूप में किया जाता है। इसकी लकड़ी से निसड़ा, कुदाल के हत्थे बनाये जाते है। पूर्व काल में भोजपत्र की छाल के ऊपर मिट्टी बिछाकर मकान की छतें तैयार की जाती थी। शीत प्रदेशों में इन छतों की आयु 100 वर्षों के बराबर होती है।

3. घुप्पी (पिटारा)– घुप्पी (पिटारा) लगभग 12 से 13 हजार की ऊँचाई पर उगने वाली वनस्पति है। इसकी नुकीली पत्तियाँ जिसमें लीसा होता है, भोटिया जनजाति के व्यक्ति इसे अपने घरों में धूप के रूप में प्रयोग करते हैं। इसका धुँआ, खाँसी व जुकाम को दूर करके वातावरण को भी सुगन्धित बनाता है। इनके अतिरिक्त सुरही, लेवची, सिदुम, घेनु, जामुन, अमेश, किरोल, बुरांश, चीड़ व देवदार के वृक्ष पाये जाते हैं। वनस्पतियाँ लगभग 7 से 12 हजार फीट की ऊँचाई पर उगती है।

अतः उक्त प्राण रक्षक औषधियों अथवा जड़ी–बूटियों को आज भी उत्तराखंड हिमालय के वासी भोटिया अपने स्वास्थ्य लाभ हेतू उपयोग में लाते है।

देश के सबसे बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली हिंदी ही राष्ट्र भाषा की अधिकारिणी है।

(सुभाषचंद्र बोस)